संथारा जैन धर्म की आगमसम्मत प्राचीन तप–आराधना : दिनेश मुनि

शिर्डी – 11 अगस्त 2015।

द्वार पर दस्तक देती मृत्यु का सहर्ष आलींगन करना संथारा है। जैन धर्म में मृत्यु को महोत्सव कैसे बनाया जाए यह साधना पद्धति बताई गई है। राजस्थान कोर्ट द्वारा लगाई गई धर्म साधना पद्धति पर रोक निंदनीय है। स्वतंत्र देश में स्वतंत्र नागरिको को अपने अपने धर्म की उपासना – साधना करने का अधिकार है। और जैन धर्म में आत्महत्या को बुरा कृत्य माना गया है। आत्महत्या करने का विचार भी जैन धर्म में वर्जित है। इसके लिए प्रयास करना तो बहुत ही अधिक निन्दनीय माना गया है। उपरोक्त विचार श्रमण संघीय सलाहकार दिनेश मुनि शिर्डी के जैन स्थानक में 'जैन धर्म में संथारा का महत्त्व' विषय पर श्रद्धालुजनो को संबोधित कर रहे थे। उन्होनें कहा कि उत्तराध्ययन सूत्र के 36 वें अध्ययन की 268 वीं गाथा में लिखा है, 'शस्त्र प्रयोग, विष भक्षण, अग्निप्रवेश, जल प्रवेश आदि अनाचरणीय साधनों का सेवन करते हुए जो व्यक्ति अपनी जीवन–लीला का समापन करते हैं वे जन्म और मरण के बंधनों को सदा के लिए बांध लेते हैं।

इस विशय को विधिक दृश्टि से स्पश्ट करने के लिए जस्टिस टी. के. टुकोल (1908–1983) ने 1976 में एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम है – सल्लेखना इज नोट सुसाइड (संलेखना आत्महत्या नहीं है)। यह पुस्तक एल. डी. इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी, अहमदाबाद में 1975 में हुए उनके व्याख्यान पर आधारित उनके व्याख्यान का अभिवर्द्धित रूप है।

जैन धर्म में उस प्रत्येक कार्य को पाप कहा गया है जिसके पीछे तीव्र वैर–भाव, भय शोक, आसक्ति, क्रोध, लोभ आदि भाव छिपे होते हैं। आत्महत्या के पीछे भी यही कुछ भाव प्रेरक रूप में छिपे रहते हैं। अतः आत्महत्या को जैन धर्म में सामान्य पाप न कहकर महापाप कहा गया है। जब कोई साधक संन्यास धर्म में प्रवेश करता है तब वह नाना प्रकार के नियमों का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। जैन साधना में ब्रह्मचर्य पालन, रात्रि भोजन का त्याग, नंगे पैरों से विहार, केश लोच, अल्प वस्त्र या अवस्त्र अवस्था आदि आवश्यक नियम होते हैं। इन सब का मुख्य उद्देश्य यही है कि शरीर से अत्यधिक आसक्ति न रहे और यह मन निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त रहे।

कुछ लोगों के मस्तिष्क में यह भ्रान्ति घर कर गई है कि जैन धर्म जीवन–रक्षा के प्रति सावधान न होकर मरणोन्मुखता को प्रश्रय देता है। उनकी यह धारणा नितान्त

निर्मूल है। क्योंकि, जैन धर्म तो सदा ही 'जीओ और जीने दो' का नारा देता रहता है। हां, यदि कभी देश, धर्म और आत्मा की रक्षा के लिए जीवन की आहुति देने का प्रसंग आया है तो उसमें भी जैनों ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया है। जैन धर्म की मान्यता रही है कि जीवन को शान से जीओ। संयम साधना और तपस्या से इसे चमकाओ और जब इससे विदा होने का अवसर आए तब भी हंसते–हंसते इस दुनिया से कूच कर जाओ। जीवन के साथ मृत्यु का अटूट सम्बन्ध है।

मृत्यु को भी जीवन्त बनाने की कला जैन धर्म में बताई गई है। उत्तराध्ययन सूत्र के 36 वें अध्ययन की 251 से 256 वीं गाथा तक इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। जैन ग्रंथ आचारांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, अन्तकृतदशा, भगवती आराधना तथा अन्य अनेक ग्रंथों में समाधिमरण के विधि–विधान के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। संथारे का विधान मुनि और गृहस्थ, दोनों के लिए है। अनेक सन्तों, गृहस्थों और राजाओं के यादगार संथारों के उल्लेख इतिहास, जनश्रुतियों, लोक–चर्चाओं, अभिलेखों और पुस्तकों में मिलते हैं। भारत–रत्न आचार्य विनोबा भावे (1895–1982) ने जब जान लिया कि अब शरीर साथ देने वाला नहीं है, तब उन्होंने समस्त इच्छाओं, औशधियों और आहार का त्याग करके संथारा ग्रहण किया था। इतिहासकारों ने जैन मान्यता की पुष्टि की है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने धर्मगुरु भद्रबाहु स्वामी के सानिध्य में संलेखना व्रत स्वीकार किया था।

उल्लेखनीय है कि संथारा दो प्रकार का होता है – सागारी (छूट–सहित या सशर्त) और आजीवन। किसी आकस्मिक संकट के समय एवं भायन–पूर्व सागारी संथारा लिया जा सकता है। सागारी संथारे में संकट या मृत्यु टल जाने पर साधक पुनः अन्न–जल ग्रहण करता है और सामान्य जीवन जीता है। सागारी संथारे की चर्चा कम ही होती है, लेकिन अनेक सजग साधक इसे नित्य नियम की तरह ग्रहण करते हैं। संथारा देह की मृत्यु और आत्मा की अमरता की हमेशा याद दिलाता रहता है। अन्य दृष्टि से भी संथारा दो प्रकार का होता है – तिविहार और चौविहार संथारा। तिविहार संथारे में प्रासुक अचित्त जल ग्रहण करने की छूट होती है, जबकि चौविहार संथारे में सभी प्रकार के अन्न–जल का पूर्ण त्याग कर दिया जाता है।